तवेसु वा उत्तम बंभचेरं

- महाश्रमण मुदित कुमार

जीवन का लक्ष्य आत्महित, सुखानुभूति व शांतिप्राप्ति होता है, होना चाहिए। स्थायी और चैतसिक सुख संयम व त्याग-प्रत्याख्यान से प्रसूत होती है। आगम-साहित्य में प्रत्याख्यान के दो प्रकार बतलाए गए हैं -१. मूलगुण प्रत्याख्यान २. उत्तरगुण प्रत्याख्यान। आध्यात्मिक साधना के लिए जो गुण अनिवार्य होते हैं वे मूलगुण कहलाते हैं साधना के विकास के लिए किए जाने वाले निर्धारित प्रयोग उत्तरगुण कहलाते हैं साधना के विकास के लिए किए जाने वाले निर्धारित प्रयोग उत्तरगुण कहलाते हैं। मूलगुण प्रत्याख्यान के दो प्रकार हैं - सर्वमूलगुण प्रत्याख्यान और देशमूलगुण प्रत्याख्यान। इनमें प्रथम सर्वविरत (मुनि) के लिए और दूसरा देशविरत (श्रावक) के लिए आचरणीय होता है। सर्वमूलगुण प्रत्याख्यान के पांच प्रकार हैं - १. सर्वप्राणातिपात विरमण २. सर्व मृषावाद विरमण ३. सर्व अदत्तादान विरमण ४. सर्व मैथुन विरमण ५. सर्व परिग्रह विरमण।

देश मूलगुण प्रत्याख्यान के भी पांच प्रकार हैं - १. स्थूल प्राणातिपात विरमण २. स्थूल मृषावाद विरमण ३. स्थूल अदत्तादान विरमण ४. स्थूल मैथुन विरमण ५. स्थूल परिग्रह विरमण।

उत्तरगुण प्रत्याख्यान के दो प्रकार हैं - १. सर्व उत्तरगुण प्रत्याख्यान २. देश उत्तरगुण प्रत्याख्यान। सर्व उत्तरगुण प्रत्याख्यान के दस प्रकार बतलाए गए हैं -

१. अनागत प्रत्याख्यान - भविष्य में करणीय तप को पहले करना। जैसे पर्यूषण पर्व के समय आचार्य, तपस्वी, ग्लान आदि के वैयावृत्त्य में संलग्न रहने के कारण मैं प्रत्याख्यान--तपस्या नहीं कर सकूंगा- इस प्रयोजन से अनागत तप वर्तमान में किया जाता है।

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. अतिक्रान्त तप – वर्तमान में करणीय तप नहीं किया जा सके, उसे भविष्य में करना।

३. कोटिसहित प्रत्याख्यान – एक प्रत्याख्यान का अन्तिम दिन और दूसरे प्रत्याख्यान का प्रारंभिक दिन हो, वह कोटिसहित प्रत्याख्यान है।

४. नियंत्रित प्रत्याख्यान – नीरोग या ग्लान अवस्था में भी "मैं अमुक प्रकार का तप, प्रयुक्त अमुक-दिन अवश्य करूंगा" – इस प्रकार का प्रत्याख्यान करना।

५. साकार प्रत्याख्यान – अपवाद सहित प्रत्याख्यान।

६. अनाकार प्रत्याख्यान – अपवाद रहित प्रत्याख्यान।

७. परिमाणकृत प्रत्याख्यान – दत्ति, कवल, भिक्षा, गृह, द्रव्य आदि के परिमाणयुक्त प्रत्याख्यान।

८. निरवशेष प्रत्याख्यान – अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का सम्पूर्ण परित्यागयुक्त प्रत्याख्यान।

९. संकेत प्रत्याख्यान – संकेत या चिह्न सहित किया जाने वाला प्रत्याख्यान। जैसे – जब तक यह दीप नहीं बुझेगा या जब तक मैं घर नहीं जाऊंगा या जब तक पसीने की बूंदें नहीं सूखेंगी तब तक मैं कुछ भी न खाऊंगा और न पीऊंगा।

१०. अध्वा प्रत्याख्यान – मुहूर्त्त, पौरूषी आदि कालमान के आधार पर किया जाने वाला प्रत्याख्यान।

देश उत्तरगुण प्रत्याख्यान के सात प्रकार प्रज्ञप्त हैं – १. दिग्व्र २. उपभोग-परिभोग परिमाण ३. अनर्थ दण्ड विरमण ४. सामायिक ५. देशावकासिक ६. पौषधोपवास ७. अतिथिसंविभाग। अन्त में अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना। ये सभी गुण - व्रत और आध्यात्मिक प्रयोग परम सुख-प्राप्ति के हेतु बनते हैं।

सुख दो प्रकार का होता है इन्द्रिय-सुख और अतीन्द्रिय सुख। इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाला सुख मनोज्ञ इन्द्रिय विषयों की उपलब्धि पर आधारित होता है। उनकी अनुपलब्धि में वह नहीं मिलता। उन सुखों में लिप्त होना दुःख का कारण बन जाता है। आगम में इस सच्चाई को इस भाषा में प्रकट किया गया है –

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह किपागफलाणं परिणामों न सुंदरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं परिणामों न सुंदरो।।

जिस प्रकार किपाक फल खाने में अच्छे लगते हैं, किंतु उनका परिणाम असुन्दर (प्राणान्त) रूप में होता है, उसी प्रकार भोग भोगकाल में सुखद लगते हैं, किन्तु परिमाण काल में वे दुःखदायी हो जाते हैं।

संस्कृत साहित्य में भी कहा गया है –

इक्षुवद विरसाः प्रान्ते सेविता स्युः परे रसाः।
सेवितस्तु रसः शान्तः सरस स्यात परम्परम।।

अन्य रस सेवित होने पर अन्त में इक्षु की भांति विरस बन जाते हैं। शान्त रस एक ऐसा रस है जो सेवित होने पर आगे से आगे सरस बनता जाता है।

शान्त रस अतीन्द्रिय सुख होता है। उसकी प्रकृति वैषयिक सुखों से भिन्न प्रकार की है। वह स्थायी व सदा सुखदाय होता है। अतीन्द्रिय सुख को पाने के लिए वैषयिक सुखों से विरत होना, अनासक्त होना अनिवार्य होता है।

ऐन्द्रियक सुखों में प्रमुख स्थान अब्रह्मचर्य का है। शाश्वत सुखों के अभीप्सु व्यक्ति के लिए इससे विरत होना अनिवार्य है। अध्यात्म के लिए समर्पित व्यक्तियों (साधुयों) के लिए तो ब्रह्मचर्य की पूर्णतया आराधना आवश्यक है। वह साधुत्व का केन्द्रीय तत्त्व है। संन्यस्त जीवन जीने वालों के लिए कंचन (धन) और कामिनी (स्त्री) से विरत रहना मौलिक आचारसंहिता है।

गृहीत मौलिक व्रत की सुरक्षा के लिए अपेक्षित होने पर प्राणत्याग भी उपादेय माना गया है। पोरूष के प्रेरक पूज्य गुरूदेव श्री तुलसी के गीत की एक पंक्ति मननीय है –

"प्राणों की परवाह नहीं है, प्रण को अटल निभाएंगे।"

ब्रह्मचर्य खतरे में पड़ जाए तो उसकी सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रतीत होने पर यथाविधि मरण का वरण भी मुनि के लिए आगम विहित है। मुनि के लिए जीवन और मृत्यु गौण हैं, उसके लिए संयम अथवा स्वीकृत मौलिक व्रतों की सुरक्षा मुख्य बात है। जीवन तो अनंत बार मिल गया। उसकी क्या मूल्यवत्ता है? मूल्यवत्ता चारित्र की आराधना की है। मुनि हो अथवा समण, उसके लिए सत्य, ब्रह्मचर्य जैसे मौलिक व्रत सिद्धान्ततः निरपवाद

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालनीय होते हैं। उनकी मूल्यवत्ता के सामने यह नश्वर जीवन ना कुछ है।

वस्तुतः ब्रह्मचर्य का पालन दुष्कर होता है। और खतरे के स्थान में रहकर भी उसको विशुद्ध रखना महादुष्कर होता है। उत्ताराध्ययन का यह घोष इस बात को बलवान बनाता है –

'उग्गं महव्वयं बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं' – उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत को धारण करना बहुत ही कठिन कार्य है। प्रस्तुत प्रसंग में उत्तराध्ययन के टिप्पणों में एक ऐतिहासिक प्रसंग दिया गया है, वह इस प्रकार है –

चातुर्मास प्रारम्भ होने को था। स्थूलिभद्र सहित चार मुनि आचार्य सम्भूतविजय के पास आए। सबने गुरूचरणों में अपना-अपना निवेदन प्रस्तुत किया। एक ने कहा – गुरूदेव ! मैं सिंह की गुफा में अपना चातुर्मास बिताना चाहता हूं। दूसरे ने सांप की बांबी पर साधना करने की इच्छा प्रगट की। तीसरे ने पनघट की घाट पर और चौथे मुनि ने कोशा वेश्या की चित्रशाला में रहने की अनुमति चाही। गुरू ने उन्हें स्वीकृति दे दी।

चार मास बीते। सभी निर्विघ्न साधना सम्पन्न कर आचार्य के पास आए। आचार्य ने पहले मुनि को 'दुष्कर कार्य करने वाले' के संबोधन से संबोधित किया। उसी प्रकार दूसरे, तीसरे मुनि के लिए भी यही सम्बोधन प्रयुक्त किया। किन्तु स्थूलिभद्र को देखते ही आचार्य ने उन्हें 'दुष्कर-दुष्कर, महादुष्कर' कहकर संबोधित किया। तीनों मुनियों को गुरू का यह कथन बहुत अखरा। वे अपनी बात कहें उससे पूर्व ही आचार्य ने उनको समाहित करते हुए कहा – शिष्यों ! स्थूलिभद्र कोशा वेश्या की चित्रशाला में रहा। सब प्रकार से सुविधाजनक चिरपरिचित स्थान, अनुकूल वातावरण, प्रतिदिन षडरस भोजन का आसेवन और फिर कोशा के हावभाव। सबकुछ होते हुए भी क्षण भर के लिए मन का विचलित न होना, कामभोगों के रस को जानते हूए भी ब्रह्मचर्य व्रत की कठोर साधना करना कितना महादुष्कर कार्य है ? यह वही कोशा है, जिसके साथ ये बारह वर्ष तक रहे थे। वहां रहकर इन्होंने अपनी साधना ही नहीं की है, अपितु कोशा जैसी वैश्या को भी एक अच्छी श्राविका बनाया है। अतः इनके लिए यह सम्बोधन यथार्थ है।

उनमें से एक मुनि ने गुरूवचनों पर विपरीत श्रद्धा करते हुए कहा–कोशा के यहां रहना कौन सा महादुष्कर कार्य है ? वहां तो हर कोई साधना कर सकता है। आप मुझे आज्ञा दें, मैं अगला चातुर्मास वहां बिताऊंगा।

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य नहीं चाहते थे कि वह मुनि देखादेखी से ऐसा करे। बार-बार गुरू के निषेध करने पर भी उसने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। अन्त में वही हुआ जो होना था। चातुर्मास बिताने के लिए वह कोशा के यहां पहुंच गया।

कुछ दिन बीते। इन्द्रियविषयों की सुलभता। मनोज्ञ शब्द, मनोज्ञ रूप, मनोज्ञ रस आदि पांचों विषयों ने अपना प्रभाव डाला और उसकी कामवृत्ति जागृत हो गई। अब वह कोशा का सहवास पाने के लिए आतुर था। अवसर देखकर एक दिन अपनी भावना को कोशा के सामने रख दिया। कोशा तो पहले से ही संभली हुई थी। वह नहीं चाहती थी कि कोई मुनि उसके कारण संयम-भ्रष्ट बने। मुनि को सन्मार्ग पर लाने के लिए उसने एक उपाय सोचा। उसने मुनि से कहा – यदि आप मुझे पाना चाहते हैं तो आपको मेरी एक शर्त पूरी करनी होगी। नेपाल से रत्न-कम्बल को लाना होगा। काम-भावना की अभीप्सा ने मुनि को नेपाल जाने के लिए विवश कर दिया। बरसात का मौसम। मार्गगत सैकड़ों कठिनाइयां और चातुर्मास के बीच विहार। जैसेतैसे अनेक कष्टों को सहकर मुनि नेपाल पहुंचा और रत्न कम्बल लेकर पुनः आ गया। भीतर ही भीतर वह बड़ा प्रसन्न हो रहा था कि आज उसकी मनोभावना सफल होगी। मुनि ने रत्न कम्बल कोशा को दी। किन्तु कोशा ने मुनि के देखते-देखते कीचड़ से सने हुए पैरों को रत्न कम्बल से पौंछा और उसे नाली में फेंक दिया। इस घटना को मुनि विस्फारित नेत्रों से देखता रह गया। उसके मन पर एक गहरी प्रतिक्रिया हुई कि कितने कष्टों को सहकर मैं इसे यहां लाया और उसका यह दुरूपयोग! बात कुछ समझ में नहीं आई। अन्त में उसने कोशा से पूछ ही लिया - भद्रे! तुमने यह क्या किया? इस बहुमूल्य कम्बल का क्या यही उपयोग था? कोशा ने व्यंग्य की भाषा में कहा - संयम रत्न से बढ़कर रत्नकम्बल कौनसी अमूल्य वस्तु है? आपने तो तुच्छ कामभोगों के लिए संयमरत्न जैसी अनमोल वस्तु को भी छोड़ दिया। फिर रत्नकम्बल है ही क्या? कोशा के इन वाक्यों ने मुनि के अन्तःकरण को बींध दिया। पुनः वह संयम में स्थिर हो गया। उसे आचार्य के 'महादुष्कर' कथन की भी स्मृति हो आई जिसके कारण उसने यह प्रचंग रचा था। अन्त में वह आचार्य के पास आया और कृत दोष की आलोचना कर सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो गया।

अब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है – १. दिव्य – देवता संबंधी २. मानुषिक – मनुष्य संबंधी ३. तिर्यगयौनिक – पशु-पक्षी संबंधी। इस त्रिविध मैथुन सेवन का तीन

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करण और तीन योग से यावज्जीवनार्थ परित्याग करने पर ब्रह्मचर्य के ३×३ ×३ = २७ भंग बन जाते हैं।

ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल वस्ति-नियमन ही नहीं केवल दैहिक भोग से विरमण नहीं, उसकी पूर्णता ब्रह्मआत्मा में रमण करने से होती है। इस साधना के लिए मन पर नियंत्रण और भावों का परिष्कार अपेक्षित होता है। जिसने यह साधना सिद्ध कर ली, वह उत्तम तपस्वी है। प्रतिकूल स्थितियों को सहना अपेक्षाकृत सरल है किन्तु मनोनुकूल स्थितियों में मन का संयम न रखना कठिन होता है। अब्रह्मचर्य से शक्तिक्षय और ब्रह्मचर्य से शक्तिसंचय होता है, शक्ति की रक्षा होती है। अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्यों में वीर्यवत्ता आवश्यक होती है आरे ब्रह्मचर्य से वह सुचारू रूप में प्राप्त होती है। इसलिए ब्रह्मचर्य को उत्तम तप की संज्ञा देना सार्थक प्रतीत होता है।

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org